# पाण्डुलिपि विज्ञान

**प्रियंका**
शोधछात्रा
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

भारतीय ज्ञान परम्परा सर्वश्रेष्ठ ज्ञान परम्परा रही है। पहले ज्ञान को श्रुति और स्मृति परम्परा से सुरक्षित रखा जाता था। धीरे-धीरे यह अनुभव होने लगा कि श्रुति परम्परा से ज्ञान को लम्बे समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता, इस ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए लेखन परम्परा शुरू हुई। भोजपत्र, ताड़पत्र, बाद में कागज पर ग्रन्थ लिखे जाने लगे। इन्हें ही पाण्डुलिपि कहते हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हजारों पाण्डुलिपियाँ तैयार हुई। कई बार एक ही ग्रन्थ की कई प्रतियाँ अलग-अलग मिलती थी। इसलिए पाण्डुलिपियों की जाँच, तुलना और शुद्ध रूप खोजने के लिए पाण्डुलिपि विज्ञान की शुरुआत हुई।

'पाण्डुलिपि विज्ञान' वह अध्ययन है जिसमें प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का शोध, संरक्षण और वर्गीकरण किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य पाण्डुलिपियों को सुरक्षित रखना, उनकी भाषा, लिपि, सामग्री, लेखन शैली और इतिहास को समझना है। इसमें प्राचीन लेखों, शिलालेखों, दस्तावेजों, पाण्डुलिपियों के लिए उपयोग हुए कागज, भोजपत्र, ताड़पत्र, स्याही, लेखन उपकरण आदि का वैज्ञानिक अध्ययन होता है। पाण्डुलिपि विज्ञान हमें अतीत की संस्कृत, विज्ञान, कला और लेखन परम्पराओं को जानने में सहायता करता है।

भारत के बहुत से मंदिरों, पुस्तकालयों, विश्वविद्यालयों और संग्रहालयों में पाण्डुलिपि विज्ञान के माध्यम से हजारों पाण्डुलिपियाँ संरक्षित हैं और उनका अध्ययन जारी है। पाण्डुलिपि विज्ञान की भूमिका केवल पाण्डुलिपियों को बचाने की नहीं है. अपितु हमारे इतिहास, संस्कृति और ज्ञान के विशाल भण्डार को आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाने की भी है।

## पाण्डुलिपि शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

हिन्दी में जिस अर्थ में 'पाण्डुलिपि' शब्द का व्यवहार प्रचलित है उसके लिए विद्वान् 'मातृका' शब्द का प्रयोग करते हैं। वस्तुतः 'मातृका' शब्द मूल हस्तलेख के अर्थ में उपर्युक्त है। 'मातृका' की अनेक हस्तलिखित प्रतिकृतियों के लिए पाण्डुलिपि शब्द का प्रयोग किया जाता है।

'पाण्डुलिपि' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'पाण्डु'तथा 'लिपि'। 'पाण्डु' शब्द गत्यर्थक पडि1 = पड् धातु को 'नुम्' आगम होकर पण्ड्धातु बनती है जिससे औणादिक 'कु' प्रत्यय होकर पाण्डु शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है सफेदी लिये हुए पीला। जब कोई सफेद वस्तु पुरानी होने लगती है तो उसकी सफेदी में सहज ही पीलापन आने लगता है। वस्तु का यह पीला रंग 'पाण्डु' कहलाता है। 'वाचस्पत्यम्' के अनुसार श्वेत व पीतवर्ण के मिश्रण को पाण्डु वर्ण कहते हैं। व्यावहारिक उपयोग के लिए पाण्डु शब्द का अर्थ 'हाथ' भी लिया जाता है।

लिपि शब्द 'लिप्' धातु से 'इन्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। पाणिनि ने लिप् धातु का प्रयोग 'उपदेहे' अर्थ में किया है, जिसका अर्थ है 'शरीर' या कोई 'पिण्ड' या 'सतह के ऊपर लेप करना या लिखावट। इस प्रकार वह प्राचीन लेख, जो किसी सतह (भोजपत्र, ताड़पत्र, सफेद कागज या कपड़े) पर हाथ से लिखा गया है, पाण्डुलिपि कहलाता है।

**पाण्डुलिपि विज्ञान एवं उसके सहायक शास्त्र**

पाण्डुलिपिविज्ञान यद्यपि आधुनिक शैक्षणिक विषयों में गिना जाता है। परन्तु भारतवर्ष की प्राचीन प्रचलित विद्याओं में यह एक शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित रहा है। लिपिविज्ञान, पुरातत्त्व, इतिहास एवं संस्कृति, ज्योतिष, साहित्यशास्त्र, पुस्तकालयविज्ञान, शासकीयलेखविज्ञान तथा राजनीतिविज्ञान आदि पाण्डुलिपिविज्ञान के सहायक शास्त्र माने जाते हैं। पाण्डुलिपि पुस्तकालयों तथा आधुनिक संग्रहालयों को भी पाण्डुलिपि विज्ञान का ही प्रायोगिक अंग माना जाता है।

लिपिविज्ञान में मुख्यतः कागज, चमड़े, तथा मोमपाटी पर लिखी लिपियों का अध्ययन किया जाता है। ये लिपियाँ विविध लिप्याधारों पर किन साधनों से लिखी जाती हैं ? वह साधन कूँची है, अथवा मयूरपंख का शीर्षभाग अथवा शलाका ? इन सब सन्दर्भों का अध्ययन लिपिविज्ञान में किया जाता है।जब प्राचीन ध्वंसावशेषों का उत्खनन होता है तो उसमें अन्यान्य वस्तुओं के साथ शिलालेखादि भी मिलते हैं। ऐसी मूर्तियाँ अथवा अन्य उपयोगी पदार्थ भी मिलते हैं जिन पर कुछ लिखा रहता है। इन समस्त उत्कीर्ण लेखों को हम पाण्डुलिपि के अन्तर्गत रखते हैं।

इसी तरह इतिहास एवं संस्कृति के माध्यम से हम पाण्डुलिपियों का ऐतिहासिक-सूत्र ढूँढ़ते हैं कि यह किस काल-खण्ड में किस विद्वान् के द्वारा लिखवाई गई अथवा किस संस्कृति से इसका सम्बन्ध है ? भारत में सिन्धुघाटी के अतिरिक्त भी तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला, काशी, ओदन्तपुरी आदि केन्द्रों में ऐसी समुन्नत संस्कृतियाँ विद्यमान रही हैं जिनमें पाण्डुलिपियों का प्रभूत लेखन हुआ। इतिहास एवं संस्कृति के अध्ययन से हम

इन तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ज्योतिष के बिना तो पाण्डुलिपि का ज्ञान ही अधूरा रहता है क्योंकि पाण्डुलिपि की पुष्पिका में आये उसके रचनाकाल को हम बिना ज्योतिषज्ञान के समझ नहीं सकते। तिथि, वार, घटी, करण तथा योग - इन पाँच अंगों से युक्त पञ्चाङ्ग ही हमारी सहायता करता है पाण्डुलिपियों के ज्योतिषीय उल्लेखों को समझने के लिये।

साहित्य तथा साहित्यशास्त्र से भी पाण्डुलिपियों के अनेक तथ्य सुबोध हो जाते हैं। वस्तुतः छन्द भी इसी शास्त्र का अंग है जो वर्णिक एवं मात्रिक-दो प्रकार का होता है। प्रायः प्राचीन पाण्डुलिपियाँ छन्दोबद्ध हैं अतः छन्दः शास्त्र के सहारे इन छन्दों का, सन्दर्भानुसार रसौचित्य समझा जा सकता है। इसी प्रकार शब्दबोध में भी साहित्यशास्त्र सहायक होता है। पाण्डुलिपि में कौन शब्द अभिधा से, कौन लक्षणा या व्यञ्जना शक्ति से अर्थ दे रहा है ? यह साहित्यशास्त्र के अध्ययन से ही समझा जा सकता है।

पुस्तकालयविज्ञान हमें पाण्डुलिपियों के रख-रखाव तथा उनकी उपयोगविधि के विषय में शिक्षित करता है। शासकीयलेखविज्ञान मूलतः लिपिविज्ञान की ही एक अभिन्नशाखा है जो मात्र पट्टों, दान-पत्रों एवं शासकीय अभिलेखों से सम्बद्ध है। प्राचीन भारत में न केवल पाण्डुलिपिविज्ञान का अपितु उससे जुड़े उपर्युक्त समस्त शास्त्रों एवं विषयों का भरपूरविकास हुआ।

## पाण्डुलिपियों का स्वरूप

पाण्डुलिपियों का स्वरूप बहुआयामी है। लिप्यासन, लेखनशैली, भाषा, लिपि, अलङ्करण तथा सरंचना के आधार पर पाण्डुलिपियों का स्वरुप भिन्न भिन्न है। पाण्डुलिपियों का स्वरूप केवल भौतिक रूप तक सीमित नहीं है अपितु इसमें छिपी हुई ऐतिहासिक, भाषिक, विषयगत, सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक विशेषताएँ भी सम्मिलित हैं। पाण्डुलिपियाँ भोजपत्र, ताड़पत्र, चमड़ा, धातु-पत्र, कागज आदि आधारों पर लिखी जाती थी। काजल, गंधक और प्राकृतिक खनिजों आदि से बनी स्याही से लेखन कार्य किया जाता था। ताड़पत्र पर अङ्कित पाण्डुलिपियों की चौड़ाई बहुत कम, प्रायः 3 से 5 से.मी. तक होती थी जबकि लम्बाई बहुत ज्यादा, प्रायः 92 से.मी. तक होती थी। भोजपत्रों पर लिखित पाण्डुलिपियों के आकार प्रायः चौकोर होते थे। पाण्डुलिपियों का आकार छोटा-बड़ा हो सकता था। इन्हें प्रायः सुरक्षित रखने के लिए लकड़ी की पट्टियों के बीच रखा जाता था और धागों से बांधा जाता था। कागज पर लिखते समय भोजपत्रों और ताड़पत्रों पर लिखने की शैली को ही विशेष रूप से अपनाया गया था। कागज पर लिखी गयी पाण्डुलिपियों का एक आकार गोलाकार भी होता था। आज भी जन्मकुण्डलियाँ इसी आकार की बनती है।

पाण्डुलिपियों में भारत की विविध ज्ञान परम्पराएँ वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, न्याय, सांख्य, योग, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, वास्तुशास्त्र, रसायन, पुराण, स्मृति आदि सञ्चित हैं। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, कश्मीरी आदि भाषाओं में पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती हैं। जैसे संस्कृत भाषा में भखशाली पाण्डुलिपि, प्राकृत में धम्मपद पाण्डुलिपि, अपभ्रंश भाषा में पउमचरिउ, काश्मिरी भाषा में राजतरंगिणी आदि पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। पाण्डुलिपियों की शैली गद्य, पद्य तथा मिश्रित है। छन्द, अलङ्कार और नाटकीय रूपों का विकास पाण्डुलिपियों में संरक्षित है। पाण्डुलिपियों में तत्कालीन समाज, रीति-रिवाज, धार्मिक आस्था और कला का प्रत्यक्ष चित्रण मिलता है। इनमें संगीत, नाट्य, शिल्पकला की झलक भी दिखाई देती है। पाण्डुलिपियाँ राष्ट्र की अमूल्य सम्पदा हैं। ये इतिहास और साहित्यिक परम्परा का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। लेखन सामग्री का रसायन, भोजपत्र की संरचना, आर्द्रता और तापमान का प्रभाव सब वैज्ञानिक विश्लेषण का विषय है।1

**पाण्डुलिपि ग्रन्थ - रचना प्रक्रिया**

पाण्डुलिपियों के लेखन की अपनी एक विशिष्ट प्रक्रिया रही है जिसका सांगोपांग विवरण प्राचीन भारतीय साहित्य में मिलता है। पाण्डुलिपि निर्माण का प्रथम बिंदु है उसका लेखक तथा लेखन की भौतिक सामग्री। लेखक के अनेक पर्याय प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। लेखक को ही कर्णिन् , लिपिक , लिपिकार तथा कालांतर में कायस्थ भी कहा गया है। लेखन में अनेक परम्पराएं प्रचलित थी, इनमें सर्वाधिक महत्व आनुष्ठानिक परम्परा का था। प्रायः लोग अभीष्ट देवता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से स्त्रोत्रग्रन्थों की प्रतियाँ बनवा कर वितरित करने का संकल्प लेते थे। कभी-कभी अपने सम्प्रदाय सिद्धांत के प्रचार-प्रसार हेतु भी ग्रन्थविशेष की प्रतिलिपियाँ लिपिकारों से बनवाई जाती थी।

पाण्डुलिपि के लेखन में कुछ अर्हतायें अनिवार्य थी कि लिखने से पहले आधार पर प्रयाप्त हाशिया छोड़ कर चारों और रेखा खींचकर आधार के मध्य में एक आयताकार कोष्ठक बना लिया जाता था। उस कोष्ठक के भीतर लिखने का कार्य किया जाता था। पंक्तियाँ बिल्कुल सीधी और अक्षरों की लम्बाई तथा चौड़ाई समान रखी जाती थी। कहीं पर भी, किसी भी पंक्ति को प्रायः खण्डित या छोटा-बड़ा नहीं किया जाता था। पाण्डुलिपियों में विराम चिह्नों का प्रयोग न करके 'अथ' एवं 'इति' जैसे शब्दों से प्रारम्भ और समाप्ति बता दी जाती थी। प्रश्नादी का बोध कराने के लिए किम्, कथम्, कस्मात् आदि सर्वनामों का प्रयोग कर वाक्य निर्मित कर लिया जाता था। छन्दों में यति का निर्देश प्रायः अक्षर-संख्या के आधार पर निर्धारित होता था।

साहित्यिक पाण्डुलिपियों में ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण तथा ग्रन्थ के अंत में पुष्पिका होती थी।

मंगलाचरण का काव्यशास्त्रीय निर्देश यह था कि प्रारम्भ में या तो अभीष्ट देवता को नमन अर्पित हो या फिर सीधे मंगलवाची शब्द का प्रयोग करते हुए ग्रन्थ आरम्भ कर दिया जाए। यह मंगलाचरण नाट्यकृतियों में नान्दीपाठ के रूप में आता है। अंत में पुष्पिका होती थी जिसमें कवि अपना वंशपरिचय देता था तथा ग्रन्थ की समाप्ति घोषित करता था।

**पाण्डुलिपियों के लेखनाधार**

प्राचीन भारतीय श्रुतसम्पदा की रक्षा में तत्कालीन लेखन सामग्री का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस सामग्री के तहत मिट्टी के पात्र, सिक्के, मुहरें, शिलाखण्ड, पाषाण, ताम्रपत्र, मिश्रित धातुपत्र, स्वर्ण व रजतपत्र, मिट्टी की कच्ची व पक्की ईंटें, चर्म, कपड़ा, ताड़पत्र, भोजपत्र, काष्ठ पट्टियाँ, हस्त निर्मित कागज व प्राकृतिक संसाधनों से निर्मित स्याही, कलम, दवात आदि प्रमुख हैं।

सर्वप्रथम लेखन के प्रमाण गुफाओं की दीवारों पर बने चित्रों और लेखों के प्राप्त हुए हैं। इन चित्रों में कुछ चित्र मानव, पशु, पक्षी जैसे परिचित प्राणियों के हैं। कुछ ऐसे चित्र भी उनमें प्राप्त होते हैं जिनकी सत्ता इस पृथ्वी पर कभी नहीं रही जैसे हिरण के पैरों के नाखून, घोड़े की पीठ पर पंख आदि। इन चित्रों में प्रयुक्त लाल, हरे व सफेद रंग स्थानीय वनस्पतियों और खनिजों से तैयार किए गए हैं जो आज भी स्थाई हैं। मध्यप्रदेश के सरगुजा जिले में रामगढ़ की पर्वतश्रृंखला में जोगीमारा गुफा की खोज हुई जिसकी दीवार पर ब्राह्मीलिपि में एक पद्य अङ्कित है जिसमें कवियों की प्रशंसा की गई है-

**आदिपयन्ति हृदयं सभावगरुका कवयो एतितयं।**
**दुले वसन्तिया हि सावानुभूते कुन्दस्ततं एवमालंगति॥**

मध्यप्रदेश में ही भोपाल एवं होशंगाबाद की गुफा भित्तियों पर भी ढेर सारे चित्र एवं आलेख अङ्कित किये गये हैं।

गुफा भित्तियों के अनन्तर पाषाण अथवा शिलालेखों का विकास हुआ। पाषाणीय लेख चट्टानों, शिलाओं, स्तम्भों आदि पर उत्कीर्ण हुए प्राप्त होते हैं। इन पाषाणखण्डों को तरासकर चिकना व लेखन के अनुकूल बना कर लिखा जाता था। सम्राट अशोक ने सर्वप्रथम समाजोपयोगी धर्मदेशनायें पाषाणों एवं स्तम्भों पर लिखवाई थी। वे पाषाणलेख व स्तम्भलेख गान्धार से लेकर दक्षिण पश्चिम भारत तक उपलब्ध हैं जिनमें प्रमुख हैं कालसी, शाहबाजगढ़, मानसेहरा, नालन्दा, इलाहाबाद आदि। सम्राट् रुद्रदामन् का गिरनार लेख (१५०

ई०) तथा खारवेल का हाथीगुम्फा लेख भी शिलाओं पर ही लिखे गए हैं।

मिट्टी की कच्ची अथवा पक्की ईंटों पर भी प्राचीन लेख प्राप्त होते हैं। इन पर नुकीली कील द्वारा लिखकर आग में पकाया जाता था जिससे लम्बे समय तक सुरक्षित रह सकें। भारतीय संग्रहालयों में चीनी-मिट्टी के बर्तनों तथा ठीकरों पर अङ्कित हजारों लेख व चित्र आदि संग्रहित हैं जो सिन्धु घाटी सभ्यता, मोहनजोदड़ों, कालीबंगा, पीलीबंगा, मेसोपोटामिया आदि विविध स्थानों की खुदाई से प्राप्त हुए हैं। नालन्दा एवं राजस्थान से मिट्टी की अभिलिखित मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं।

प्राचीन काल में लेखन सामग्री हेतु स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य, लोह, मिश्रित धातु आदि का प्रयोग भी बहुतायत में हुआ है। स्वर्ण एवं रजत का प्रयोग विविध प्रकार की स्याही बनाने के लिए भी होता रहा है। राजाओं के द्वारा दिये गये भूमिदान, धार्मिक संदेश और अधिकार पत्र ताम्बे की पट्टिकाओं पर अङ्कित किये जाते थे। धातु पर लिखना इतना महंगा और श्रम साध्य था इसलिए इनका प्रयोग सामान्य ग्रन्थ लेखन में नहीं हो पाया।

काष्ठफलक अथवा लकड़ी की पाटी पर भी पाण्डुलिपि लेखन किया गया। इन काष्ठ पट्टिकाओं पर राजाज्ञाएँ तथा विविध लिपियों की वर्णमालाएँ प्राप्त होती हैं। हिमालय क्षेत्र विशेषकर कश्मीर में पाए जाने वाले भोजवृक्ष की छाल पर लेखन कार्य का विकास हुआ। यह इतनी मजबूत, चिकनी तथा विशाल आकार की होती है कि इसे बड़ी सरलता से कागज के पत्ते के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। भोजपत्रों का प्रयोग तंत्र-मंत्र व ज्योतिषीय ग्रन्थों के लिखने में अधिक हुआ है।

लेखनाधार के रूप में दक्षिण भारत और पश्चिम भारत में ताड़पत्र का प्रयोग हुआ। ताड़ के पेड़ के बड़े पत्तों को काटकर सुखाकर फिर उन्हें समतल करके लेखन योग्य बनाया जाता था। विश्व प्रसिद्ध सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के सरस्वती भवन में आज भी एक लाख चौदह हजार ताड़ पत्रों पर अङ्कित पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। पत्ते पर लिखने की एक किंवदन्ती है कि महर्षि पतञ्जलि ने पीपल के पत्तों पर 'महाभाष्य' नामक ग्रन्थ लिखा था।

कपड़े पर लिखने की प्रथा महाभारत युग में थी। संदेश कपड़े पर लिखकर भेजे जाते थे। रथ के ध्वज पर लिखने के प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। चीन में रेशमी कपड़ों पर ग्रन्थ लिखने की प्रथा थी। चमड़े पर लिखने की प्रथा भारत में नहीं थी।

प्राचीन भारतीय लेखन आधारों में से कागज एक महत्त्वपूर्ण साधन है। सर्वप्रथम कागज बनाने की विधि चीन में विकसित हुई थी। भारत में कागज बनाने हेतु वृक्षों कि छाल, कच्चे बाँस, रेशम, रुई, पुराने रस्सों, पटसन आदि को गला सड़ा कर लुगदी तैयार की जाती थी। लुगदी से कागज बनाया जाता था। कागज पर लिखते समय भोजपत्रों पर लिखने की शैली को ही विशेष रूप से अपनाया गया है। भारत में उपलब्ध कागज पर लिखी गई प्राचीन पाण्डुलिपि कवि भासकृत 'पञ्चरात्र' नाटक की प्रति का उल्लेख मिलता है जो नेपाल से प्राप्त हुई है। यह हस्तलिपि अब कोलकाता के 'आशुतोष संग्रहालय' में सुरक्षित है। पाण्डुलिपियों के लेखन आधार केवल सामग्री मात्र नहीं हैं अपितु ऐतिहासिक स्मृति के जीवन्त साक्षी हैं।

**पाण्डुलिपि लेखन के प्रमुख उपकरण**

पाण्डुलिपि लेखन के प्रमुख उपकरण हैं रेखापाटी, धागा, सुनहरी एवं रुपहली स्याही, सामान्य काली स्याही तथा चित्र रचना में प्रयोज्य विविध रंग। सबसे मुख्य उपकरण स्याही और लेखनी थे।

रेखापाटी का अर्थ है रेखा खींचने के लिए काष्ठ निर्मित पट्टिका। यह आधुनिक स्केल जैसा उपकरण होता था। इसके सहारे पत्थर, मृत्फलक, भोजपत्र, काष्ठफलक, ताड़पत्र, वस्त्र के ऊपर पहले रेखाएं बनाई जाती थी ताकि पंक्ति सीधी रहे। हरताल के पीले रंग में डोरे को डुबोकर इन्हीं रेखाओं पर रंगीन रेखा खींची जाती थी और इसी रेखा पर लेखन किया जाता था। सुनहरी एवं रुपहली स्याही का प्रयोग पाण्डुलिपि लेखन में साज-सज्जा के लिए किया जाता था।

मुख्य रूप से काली स्याही का सबसे ज्यादा प्रयोग होता था। स्याही बनाने की विशिष्ट विधि होती थी। सबसे सरल विधि तिल के तेल का दीपक जलाकर उसकी लौ के ऊपर मिट्टी का पात्र उल्टा रख दिया जाता था, जिस पर काजल की परत जम जाती थी। इस काजल में बबूल या नीम के पेड़ से प्राप्त प्राकृतिक गोंद का पानी में घोला हुआ मिश्रण मिलाया जाता था। गोंद स्याही को गाढ़ापन देता था और उसे लेखन की सतह पर चिपकने में मदद करता था।

स्याही में रौंगणी नामक पदार्थ मिलाने से चमक आ जाती थी और मक्खियाँ भी पास नहीं आती थी। यह स्याही भोजपत्र और बाद में कागज पर लिखने के लिए उत्तम थी। ताड़ के पत्तों पर लिखने के लिए स्याही में लोहे का अंश मिलाया जाता था।

पाण्डुलिपियों को आकर्षक बनाने, अध्यायों को अलग करने, शीर्षकों को चिह्नित करने या चित्रों के लिए

विभिन्न रंगों का प्रयोग होता था। लाल स्याही गेरू, सिन्दूर को गोंद के पानी में मिलाकर बनाई जाती थी। इसका प्रयोग ज्यामितीय आकृतियाँ बनाने के लिए किया जाता था। पीली स्याही के रूप में हल्दी या हरताल का उपयोग किया जाता था। हल्दी का उपयोग गलत लिखे अंशों को मिटाने के लिए किया जाता था।

लेखनी के रूप में मुख्य रूप से नुकीली शलाका तथा स्याही वाली कलम का प्रयोग किया जाता था। ताड़पत्रों पर लिखने के लिए धातु से बनी नुकीली शलाका का प्रयोग होता था। इस लेखनी से ताड़पत्रों पर अक्षरों को उकेरकर फिर काजल में तेल मिलाकर उकेरे हुए अक्षरों पर लेप लगा दिया जाता था। इसके बाद कपड़े से सतह को पोंछ दिया जाता था। ऐसा करने से स्याही का मिश्रण सिर्फ उकेरी गई रेखाओं में भर जाता था और अक्षर स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते थे।

भोजपत्र और कागज जैसी नरम सतहों पर स्याही से सीधे लिखा जा सकता था। इसके लिए सरकण्डे या बांस से बनी लेखनी का प्रयोग होता था। सरकण्डे के एक टुकड़े को लेकर उसे कलम की तरह टेढ़ा काट लेते थे। इससे लेखन कार्य करना सरल होता था। बाद में कुछ क्षेत्रों में हंस या मोर जैसे बड़े पक्षियों के पंखों से भी कलम बनाने का चलन शुरू हुआ। इसके डंठल को भी सरकण्डे की तरह ही काटकर नोक बनाई जाती थी। लेखनी ने मानव सभ्यता को विचारों की अभिव्यक्ति और उन्हें सुरक्षित रखने का माध्यम दिया।

## पाण्डुलिपियों के प्रकार और प्रमुख पाण्डुलिपियाँ

पाण्डुलिपियों के अनेक प्रकार उपलब्ध होते हैं पाण्डुलिपि लेखन के आधार, आकृति, लेखन शैली, रूप विधान की दृष्टि से मुख्यतः चार प्रकार हैं। पाण्डुलिपि का प्रथम प्रकार लेखन के आधार पर आश्रित है। पाण्डुलिपियाँ गुफाभित्ति, पाषाण, चर्मपत्र, ताड़पत्र, भोजपत्र, कागज आदि आधारों पर लिखी गई थी।

आकृति के आधार पर पांच प्रकार की पाण्डुलिपियाँ होती हैं, गण्डी, कच्छपी, मूष्टि, सम्पूटफलक, छेदपाटी। जो पुस्तक मोटाई, चौड़ाई दोनों में समान हो उसे गण्डी कहते हैं। ताड़पत्र पर लिखी पाण्डुलिपियाँ प्रायः गण्डी होती हैं। जो कच्छपाकृति हो अर्थात बीच में चौड़ी तथा किनारे संकरे हो उस पाण्डुलिपि को कच्छपी कहते हैं। इस प्रकार की पाण्डुलिपियाँ सम्पूर्णानंद विश्वविद्यालय में सुरक्षित है। जो पाण्डुलिपियाँ मुष्टिग्राहय हों उसे मुष्टि कहते हैं। ये प्रायः छोटे और महीन अक्षरों में भोजपत्र या कागज पर लिखी जाती थी। सम्पुटफलक उस पाण्डुलिपि को कहते हैं जो काष्ठ पट्टिकाओं से बंद हो। कम चौड़े और कम पन्नों तथा कम मोटाई वाली पाण्डुलिपियों को छेदपाटी कहा जाता है।

लेखन शैली के आधार पर पाण्डुलिपियाँ आठ प्रकार की होती हैं। त्रिपाठ, पंचपाठ, शुण्डाकार, सचित्र पुस्तक, स्वर्णाक्षर लिपि, रजताक्षर लिपि, सूक्ष्माक्षर लिपि, स्थूलाक्षर लिपि। रूप विधान के आधार पर पाण्डुलिपियाँ तीन प्रकार की होती हैं, त्रिपाठ, पंचपाठ, शुण्डाकार। त्रिपाठ शैली वह है जब पाण्डुलिपि का मूल अंश मोटे अक्षरों में बीचों-बीच लिखा जाता था तथा उसकी टीका महीन अक्षरों में ऊपर तथा नीचे लिखी जाती थी। इस प्रकार लिखने से पृष्ठ तीन पाटों में विभक्त हो जाता था। पंचपाठ शैली में टीका ऊपर नीचे लिखने के साथ-साथ बाएँ और दाएँ भी लिखी जाती थी। शुण्डाकार शैली में ऊपर की पंक्ति लंबी और नीचे की पंक्तियाँ क्रमशः दोनों ओर से छोटी होती जाती थी।

कुछ प्रमुख पाण्डुलिपियाँ जो एशिया महाद्वीपों में भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त हुई। प्रथम पाण्डुलिपि है, भखशाली पाण्डुलिपि जो भोजपत्रों पर शारदा लिपि में निबद्ध संस्कृत भाषा में रचित है। यह पाण्डुलिपि १८८१ ई० में पाकिस्तान के मर्दान नामक स्थान पर एक किसान को खेत की खुदाई करते समय मिली थी। यह ज्योतिष गणित का एक ग्रन्थ है। बावेर पाण्डुलिपि गुप्त कालीन ब्राह्मी लिपि में लिखी गई है। इसकी भाषा प्राकृत मिश्रित संस्कृत है। यह १८९० ई० में चीन के जिंनजियांग में कुमतुरा नामक स्थान से प्राप्त हुई थी। यह पाण्डुलिपि आयुर्वेद के प्राचीनतम स्वरूप को प्रकट करती है। गिलगित पाण्डुलिपियाँ कश्मीर के मुजफ्फराबाद जनपद में है। विभाजन के पूर्व यह स्थान बौद्ध संस्कृति का महान केंद्र था। इन पाण्डुलिपियों की लिपि शारदा, भाषा बौद्ध संकर संस्कृत है।

उपरोक्त पाण्डुलिपियाँ भारत के बौद्धिक और सांस्कृतिक इतिहास के विशाल भण्डार का एक छोटा सा हिस्सा है। यह हमें हमारे अतीत से जोड़ती हैं और हमारी विरासत की गहराई को दर्शाती हैं। इन पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त गॉडफ्रे पाण्डुलिपि, होरियूजी पाण्डुलिपि, तुरफान, पैप्पलाद संहिता आदि पाण्डुलिपियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर हमें प्राप्त हुई हैं।

## पाण्डुलिपियों के स्रोत

पाण्डुलिपियों के स्रोतों से तात्पर्य उन स्थानों, संस्थाओं और संग्रहालयों से होता है जहाँ से हमें पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। प्राचीन समय में पाण्डुलिपियों के प्रमुख स्रोत मठ, मंदिर और बौद्ध विहार रहे हैं। मठ और मन्दिर केवल पूजा या साधना के स्थल नहीं थे अपितु शिक्षा और ज्ञान के प्रमुख केन्द्र भी थे। मन्दिरों के गर्भगृहों में पाण्डुलिपियों को सुरक्षित रखा जाता था। यहाँ पर वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि अनेक धार्मिक व दार्शनिक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ प्राप्त होती हैं। मन्दिरों के पश्चात मठों में पाण्डुलिपियों को

सुरक्षित रखा गया था। राजदरबार भी पाण्डुलिपियों के प्रमुख स्रोत रहे हैं, राजदरबारों में विद्वान् और राजपुरोहित शास्त्रार्थ तथा ग्रन्थ रचना करते थे और राजा अपने पुस्तकालयों में पाण्डुलिपियों का संरक्षण करते थे जहाँ से कालांतर में असंख्य पाण्डुलिपियाँ खोजी गई हैं।

पाण्डुलिपियों के दूसरे बड़े स्रोत शैक्षणिक संस्थान और गुरुकुल रहे हैं। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभी जैसे विश्वविद्यालयों में न केवल शिक्षा दी जाती थी, बल्कि ग्रन्थों की नकलें तैयार की जाती थी और विद्वानों द्वारा इनका संकलन भी किया जाता था। यहाँ से अनेक दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ हमें प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त घर-परिवार भी पाण्डुलिपियों के स्रोत रहे हैं। कई विद्वान्, कवि, पण्डित और आचार्य अपने निजी प्रयोजन के लिए या अपने शिष्यों को पढ़ाने के लिए ग्रन्थ तैयार करते थे और इन्हें अपने घरों में संरक्षित रखते थे। इन्हीं से आगे चलकर पारिवारिक संग्रह या निजी पुस्तकालय बने जो आज पाण्डुलिपियों के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध हो रहे हैं। बिहार में स्थित 'खुदाबख्श पुस्तकालय' खुदाबख्श का निजी पुस्तकालय था। १८९१ ई० में इसे सार्वजनिक पुस्तकालय बना दिया गया तब इसमें पाण्डुलिपियों कि संख्या ६००० थी। इन्ही स्रोतों से साहित्यिक ग्रन्थों के साथ-साथ आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, खगोल, संगीत और वास्तुशास्त्र से संबंधित पाण्डुलिपियाँ भी उपलब्ध हुई हैं।

### पाण्डुलिपि सरंक्षण

पाण्डुलिपियाँ किसी भी देश की धरोहर होती हैं जिसमें उस देश का अतीत और संस्कृतियाँ छिपी होती हैं। हमारे देश में प्राचीन काल से ही पाण्डुलिपियों की सुरक्षा के विविध उपाय किए जाते थे तथा वर्तमान समय में राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन नई दिल्ली के माध्यम से पाण्डुलिपियों की खोज तथा उनको चीर काल तक सुरक्षित रखने के विविध उपाय किए जा रहे हैं। पाण्डुलिपियों की सुरक्षा के उपायों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं पारंपरिक तथा वैज्ञानिक उपाय।

पारम्परिक उपायों के अंतर्गत वे साधन या विधियाँ आती हैं जिनकी सहायता से प्राचीन काल में पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित रखी जाती थी। वस्तुतः इन साधनों का उपयोग इनके लेखन से ही प्रारम्भ हो जाता था। जैसे स्याही में औषधीय गुण युक्त पदार्थ तथा लेखन आधार में हल्दी, कपूर आदि कीटनाशकों के प्रयोग के द्वारा पाण्डुलिपियों की सुरक्षा की जाती थी। इसके अनंतर पाण्डुलिपियों को काष्ठ पट्टिकाओं के बीच में रखा जाता था जिससे उनमें आर्द्रता का प्रवेश न हो सके तथा लाल रंग के वस्त्र में भी लपेटा जाता था। पाण्डुलिपियों को समय-समय पर धूप भी दिखाई जाती थी जिससे उसमें पहले से उत्पन्न आर्द्रता का नाश होता था तथा भविष्य में भी

यह सम्भावना शून्य हो जाती थी। पाण्डुलिपियों को ऐसे स्थान पर रखा जाता था जहाँ पर जलाशय आदि जल स्रोत न हों तथा खिड़की खोलने पर सूर्य का प्रकाश एवं ऊष्मा आती हो। ग्रन्थालय में किसी भी प्रकार की ठण्डी हवाओं का प्रवेश नहीं होना चाहिए क्योंकि यह आर्द्रता को लाती हैं जिससे पाण्डुलिपियों में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अतः कक्ष में तापमान सदैव एक समान ही रहना चाहिए।

शीतल हवाओं में उत्पन्न होने वाले विकार का अत्यंत विलक्षण वर्णन महाकवि कालिदास ने 'उत्तरमेघ' में कुछ इस प्रकार से किया है।

**नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमीरालेख्यानां स्वजलकणिका-दोषमुत्पाद्य सद्यः।**
**शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गैधूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ।।1**

इस प्रकार, पाण्डुलिपियों के रक्षणार्थ विशिष्टकोटिक भवन का होना अनिवार्य है।

वैज्ञानिक उपायों के अंतर्गत आधुनिक यन्त्रों तथा रसायनों के द्वारा पाण्डुलिपियों का संरक्षण किया जाता है। आधुनिक यन्त्रों के माध्यम से कुछ ही क्षणों में पूरी पाण्डुलिपि की फोटो प्रति बनाकर उसका लैमिनेशन करके स्कैन करके तथा ईमेल, वेबसाइट और इंटरनेट के माध्यम से पाण्डुलिपियों को अनन्त काल के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

## पाण्डुलिपियों के संरक्षण की चुनौतियां

पाण्डुलिपियाँ हमारे प्राचीन ज्ञान, संस्कृति और इतिहास का अमूल्य खजाना हैं। इन्हें सुरक्षित रखना बहुत जरूरी है, लेकिन संरक्षण के रास्ते में कई तरह की चुनौतियाँ आती हैं। सबसे बड़ी समस्या प्राकृतिक कारणों से होती है। पाण्डुलिपियाँ अक्सर ताड़पत्र, भोजपत्र, कपड़े या पुराने कागज पर लिखी होती थी। समय बीतने पर इनमें नमी, धूल, धूप और मौसम का असर पड़ता है और ये धीरे-धीरे टूटने या मिटने लगती हैं। इसके अलावा कीड़े-मकोड़े और दीमक भी इनको बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। दूसरी बड़ी चुनौती उचित जगह और साधनों की कमी है। गाँवों या छोटे पुस्तकालयों में पाण्डुलिपियों को साधारण अलमारियों में रख दिया जाता है, जहाँ तापमान और नमी का नियंत्रण नहीं होता।

पाण्डुलिपियों के अध्ययन में सबसे बड़ी समस्या उनकी भाषा और लिपि की जटिलता है। प्राचीन काल की अनेक पाण्डुलिपियाँ संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, या क्षेत्रीय भाषाओं में लिखी गई हैं, और उनकी लिपियाँ भी विविध प्रकार की हैं—जैसे ब्राह्मी, शारदा, नागरी, आदि। आज इन भाषाओं और लिपियों को

जानने वाले विशेषज्ञ बहुत कम हैं, जिसके कारण कई पाण्डुलिपियों की भाषा सामान्य पाठकों को समझ में नहीं आती। साथ ही, समय के साथ कुछ अक्षर धुंधले या मिट चुके हैं, जिससे उनके अर्थ का पता लगाना और अनुवाद करना अत्यंत कठिन हो जाता है। यह भाषिक और दृश्य जटिलता संरक्षण के साथ-साथ अध्ययन की प्रक्रिया को भी चुनौतीपूर्ण बनाती है। एक अन्य चुनौती पर्याप्त दस्तावेज़ीकरण और वर्गीकरण की कमी है। बहुत-सी पाण्डुलिपियाँ बिना किसी सूची या रिकॉर्ड के रखी हुई हैं। जब तक उनका ठीक से वर्गीकरण और सूचीकरण नहीं होगा, तब तक उनका व्यवस्थित संरक्षण संभव नहीं है। डिजिटलीकरण इस दिशा में एक आशा की किरण अवश्य है, परंतु यह कार्य अत्यंत नाजुक और खर्चीला है। कई बार पाण्डुलिपियाँ इतनी जर्जर अवस्था में होती हैं कि स्कैन करना या संभालना भी जोखिम भरा हो जाता है।

उपसंहारः-

पाण्डुलिपि विज्ञान केवल प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के अध्ययन तक सीमित एक विषय नहीं, अपितु यह किसी भी सभ्यता के बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को समझने की कुंजी है। यह एक ऐसा सेतु है जो हमें हमारे पूर्वजों के ज्ञान, उनकी सोच, कला और जीवन-दर्शन से सीधे जोड़ता है। इस विज्ञान के माध्यम से हम न केवल यह जानते हैं कि अतीत में क्या लिखा गया, बल्कि यह भी समझते हैं कि उसे कैसे, किन सामग्रियों से और किन परिस्थितियों में लिखा और संरक्षित किया गया। इस शास्त्र का महत्व बहुआयामी है। यह एक ओर जहाँ भाषा विज्ञान और लिपि के क्रमिक विकास को समझने में सहायता करता है, वहीं दूसरी ओर इतिहास के अनछुए पहलुओं को उजागर करता है। पाण्डुलिपियों में निहित ज्ञान, चाहे वह आयुर्वेद का हो, खगोलशास्त्र का हो, गणित का हो या दर्शन का, हमें हमारी गौरवशाली बौद्धिक विरासत से परिचित कराता है। पाण्डुलिपि विज्ञान इन ग्रन्थों का वैज्ञानिक विश्लेषण, संरक्षण और संपादन कर उस ज्ञान को वर्तमान पीढ़ी के लिए सुलभ बनाता है। आधुनिक युग में, जहाँ सूचना प्रौद्योगिकी अपने चरम पर है, पाण्डुलिपि विज्ञान का महत्व और भी बढ़ गया है। डिजिटलीकरण जैसी तकनीकों के माध्यम से इन दुर्लभ और नाजुक पाण्डुलिपियों को न केवल भौतिक क्षरण से बचाया जा रहा है, बल्कि उनके ज्ञान को भौगोलिक सीमाओं से परे दुनिया भर के शोधकर्ताओं और जिज्ञासुओं तक पहुँचाया जा रहा है। पाण्डुलिपि विज्ञान केवल अतीत का अध्ययन नहीं, बल्कि यह भविष्य के लिए ज्ञान के संरक्षण का एक महत्वपूर्ण मिशन है। यह हमारी सामूहिक स्मृति को सहेजने और यह सुनिश्चित करने का माध्यम है कि हमारे पूर्वजों की अमूल्य निधि आने वाली पीढ़ियों का भी मार्ग प्रशस्त करती रहे।